

“आधुनिक समाज में स्कूल एक अपरिहार्य संस्था का दर्जा हासिल कर चुका है। स्कूल के हिस्से में बच्चे के विकास के बहुत-से क्षेत्र आते हैं और यह अपेक्षा की जाती है कि वह बच्चों के अपेक्षित विकास में मदद करे। स्कूलों में क्या सिखाया जाए, कैसे सिखाया जाए और जो सिखाया गया है उसका मूल्यांकन कैसे किया जाए आदि ऐसे सवाल हैं जो कि एक सुविचारित शिक्षाक्रम पर चिन्तन की दिशा में आगे ले जाते हैं। वस्तुतः शिक्षाक्रम से जुड़े सवाल-हम कैसा समाज चाहते हैं, इंसान को समझते कैसे हैं, हमारे मन में ज्ञान की धारणा क्या है और सीखने एवं सिखाने के तरीकों पर हमारी समझ और दृष्टि आदि पर निर्भर करते हैं। यह लेख शिक्षाक्रम से अनिवार्य रूप से जुड़े कुछ ऐसे ही सवालों के दिशा-निर्देशक सिद्धान्तों की ओर हमारा ध्यान खींचता है।”

## कक्षा से लक्ष्यों की ओर : शिक्षाक्रम- क्षेत्र का मानचित्रण

रोहित धनकर

### समस्याओं का बस्ता

भारत में एक बच्ची का स्कूल 6+ की उम्र से आरंभ होता है और लगभग 18+ तक चलता है, जब तक कि वह उच्च माध्यमिक परीक्षा पूरी नहीं कर लेती। जब वह स्कूल में दाखिला लेती है, उसके पास बहुत-सी क्षमताएं, कौशल, ज्ञान, जानकारीयां, समझ, वृत्तियां और मूल्य होते हैं। इसके अलावा बच्ची के अभिभावक, शिक्षक और आम समाज उसके स्कूल छोड़ने के समय की एक छवि रखते हैं। इस छवि में इन क्षमताओं, कौशलों, ज्ञान, जानकारीयों, समझ, दृष्टिकोण व मूल्यों का, कुछ विशेष दिशाओं में तथा एक विशेष स्तर तक, विकास निहित होता है। स्कूल का कार्य यह माना जाता है कि वह बच्ची को इसमें मदद करे कि स्कूल में दाखिला होने के बाद से वह मानसिक व शारीरिक विकास के वांछित स्तरों तक प्रगति कर पाए।

इस विकास का एक बड़ा हिस्सा स्कूल के किसी हस्तक्षेप के बगैर भी हासिल होगा। उदाहरण के लिए, घर की भाषा को सीखना, सामाजिक आदान-प्रदान के तौर-तरीके, उस बच्ची के समुदाय में प्रचलित आम ज्ञान व दृष्टिकोण तथा लगभग पूरा का पूरा शारीरिक विकास। बच्ची की प्रगति के इस हिस्से के लिए स्कूल को बहुत थोड़ा या लगभग नगण्य श्रेय दिया जा सकता है। तथापि, इसका अर्थ यह नहीं है कि इसका स्कूल शिक्षाक्रम से कोई संबंध नहीं है। स्कूल शिक्षाक्रम, बच्ची के बढ़ने और सामाजिक जीवन जीने के प्राकृतिक चरणों पर भारी निर्भरता के बगैर, उससे

मार्गदर्शन के लिए, शायद ही अपने पैरों पर खड़ा हो सके।

मैं ऊपरी अनुच्छेद में 'बच्ची' शब्द का प्रयोग कर रहा हूं और पूरे लेख में इसी का प्रयोग करता रहूंगा, लेकिन मैं कहना चाहूंगा कि 'बच्ची' या 'बच्चे' जैसा कोई मानक वास्तविकता में नहीं है। सभी बच्चे अपने विकास के हर चरण में, किसी न किसी रूप में विशिष्ट होते हैं और उनमें खास व्यक्तिगत गुण होते हैं। कोई भी शिक्षाक्रम, जो व्यक्तिगत वैशिष्ट्य को जगह नहीं दे सकता, वह असल शिक्षाक्रम में बेकार साबित होगा। पर जब हम शिक्षाक्रम की सामान्य बनावट की चर्चा कर

**लेखक परिचय :** राष्ट्रीय पाठ्यचर्या की रूपरेखा : 2005 की संचालन समिति सदस्य, स्वयंसेवी संगठन दिगन्तर के संस्थापक एवं सचिव।

**पुस्तक :** शिक्षा और समझ, शिक्षा के संदर्भ और विकल्प (संपादित), आधार प्रकाशन, पंचकुला, हरियाणा।

**सम्पर्क :** दिगन्तर, टोडी रमजानीपुरा, खोनागोरियान रोड, जगतपुरा, जयपुर-302025

email : rdhankar@gmail.com

रहे हैं, 'बच्ची' शब्द के प्रयोग का अर्थ है कि उठाया गया प्रश्न सभी बच्चों के लिए महत्वपूर्ण रहेगा और अच्छे/बुरे जवाबों की कसौटी सामान्य सन्दर्भों में तय की जा सकती है। बेशक, किसी उत्तर का असली मर्म किसी विशेष बच्ची के संदर्भ के अनुसार अवश्य ही भिन्न होगा।

स्कूल शिक्षाक्रम की असली चिंता है- उन क्षमताओं (कौशल, ज्ञान, जानकारियां आदि) तथा उन वृत्तियों (रवैए, मूल्य आदि) का विकास, जो अत्यधिक इच्छित होने के बावजूद भी, वांछित दिशा में या अपेक्षित स्तर तक विकसित नहीं हो सकते, यदि उनका विकास स्कूल द्वारा प्रोत्साहित न किया जाए। इस निर्धारित कार्य को सुविचारित रूप से हासिल करने में स्कूल की पहली समस्या है, उन क्षमताओं व वृत्तियों का चयन जिन्हें वह विकसित करना चाहता है। बच्ची स्कूल में सीखने व विकसित होने लायक अनेकों संभावनाओं के साथ प्रवेश करती है। छः साल की उम्र में शेखावटी की एक राजस्थानी बच्ची तेलुगु सीखने के लिए पूर्णतः सक्षम है, पर उस क्षेत्र का कोई स्कूल तेलुगु नहीं सिखाता। वे हिन्दी और अंग्रेजी के पीछे लगे रहते हैं। कालीन उद्योग के मालिकों ने अपने निरंकुश लोभ से अच्छी तरह सिद्ध कर दिया है कि एक छः साल की बच्ची कालीन बुनना सीख सकती है, पर कोई स्कूल उसे यह नहीं सिखाता, बल्कि वे कागज मोड़ने, मिट्टी के खिलौने गढ़ने और चित्रकला जैसे कौशलों को चुनते हैं।

छः साल का ही एक बच्चा अपने से अभिवादन करने वाले व्यक्तियों के प्रति उदंड होने में पूर्णतः सक्षम है, लेकिन स्कूल उसे विनम्रता सिखाते हैं। स्पष्ट है कि सभी क्षेत्रों में, चाहे कौशल हों, ज्ञान हो या मूल्य; स्कूल चुनाव कर रहे हैं। इस प्रकार, स्कूल कुछ खास चीजों का सीखना निरुत्साहित करते हैं और चुनी हुई चीजों के सीखने को प्रोत्साहित करते हैं। यह चयन किससे मार्गदर्शित होता है ? यह चुनाव करने के लिए उनके पास क्या मापदण्ड होते हैं ? यदि स्कूल सुविचारित रूप से चलाए जाते हैं तो उनके पास इन चुनावों का कोई आधार अवश्य होना चाहिए। जॉन डिवी का कहना है कि यह चुनाव तभी संभव है जब स्कूल में शिक्षकों के सामने कोई लक्ष्य हों। वह कहते हैं, "लक्ष्य एक पूर्वानुमानित परिणाम के रूप में कार्यों को दिशा देता है। यह मात्र एक दर्शक की व्यर्थ राय न होकर परिणति तक जाने वाले हर चरण को दिशा-निर्देशित करने वाला है। यह पूर्वदृष्टि तीन तरह से काम करती है। सर्वप्रथम, यह मौजूदा स्थितियों पर ध्यानपूर्वक गौर करने को प्रेरित करती है जिससे लक्ष्य तक पहुंचने के लिए उपलब्ध साधनों और मार्ग में पड़ी रुकावटों का जायजा लिया जा सके।" स्कूल के संदर्भ में, इसका अर्थ है, ध्यानपूर्वक यह अध्ययन करना कि छः साल के बच्चे क्या क्षमताएं रखते हैं और क्या सामाजिक सांस्कृतिक परिस्थितियां विद्यमान हैं।

दूसरे, डिवी कहते हैं, "लक्ष्य सुझाता है कि साधनों के इस्तेमाल का उपयुक्त क्रम क्या हो। यह मितव्ययता से चुनाव और नियोजन को प्रोत्साहित करता है।" स्कूल के लिए, इसका अर्थ है यह निर्णय लेना कि क्या सिखाया जाना है और किस क्रम में सिखाया जाना है। तीसरे, "यह विकल्पों का चुनाव संभव बना पाता है। यदि हम यह या वह कदम उठाने के परिणामों का पूर्वानुमान लगा सकें तो फिर हम दोनों मार्गों के फायदों की तुलना कर सकते हैं और उनमें से कौन-सा अधिक वांछित होगा, यह निर्णय ले सकते हैं।" इससे हमें चुनाव करने के लिए कसौटी मिलती है। इस संदर्भ में डिवी घोषित करते हैं कि, "कुल मिलाकर निष्कर्ष यह है कि एक लक्ष्य के साथ कार्य करना चिंतनशील कार्य करने का ही दूसरा नाम है।"

इस प्रकार, चुनाव करने की समस्या को जिससे हमने शुरुआत की थी, अब शायद 'लक्ष्यों की समस्या' कहना ज्यादा युक्तिगत होगा। यदि शिक्षा को एक विचारशील गतिविधि बनना है तो हम देख चुके हैं कि सचेतन लक्ष्य अत्यावश्यक हैं। पर डिवी हमें यह भी याद दिलाते हैं कि, "जो भी लक्ष्य निर्धारित किया जाए, वह मौजूदा परिस्थितियों से ही फलीभूत होना चाहिए। जो कुछ अभी घट रहा है उसका तथा परिस्थिति के संसाधनों व कठिनाइयों का आकलन करने के बाद ही लक्ष्यों की बात की जा सकती है। हमारी गतिविधियों के परिणाम के बारे में बनाए गए शैक्षणिक व नैतिक सिद्धान्त अक्सर इस नियम का उल्लंघन करते हैं।"

इस समस्या के पूर्ण परिमाण को समझने के लिए हमें ध्यान देना होगा कि शिक्षा के लक्ष्यों को एक साथ ही दोनों चीजों से वास्ता रखना होगा। बच्ची की मौजूदा स्थिति और साथ के साथ शैक्षणिक प्रक्रिया का वांछित परिणाम। इस प्रकार, यह समस्या मांग करती है कि लक्ष्यों को ऐसे परिभाषित किया जाए जिससे इन दोनों मकसदों के साथ न्याय होता हो और जो शिक्षा की पूरी प्रक्रिया को दिशा देने की भी क्षमता रखते हों।

डिवी से प्रेरणा लेकर, मैं सुझाना चाहूंगा कि दूसरी समस्या है- 'स्तर सापेक्ष उद्देश्यों की समस्या'। इस नाम से मेरा क्या अभिप्राय है, यह समझाने के लिए मैं एक उदाहरण लेता हूं। मान लें कि पूरी विवेचना (किसकी, यह हम कुछ समय बाद बात करेंगे) के बाद हम 'विवेक जनित स्वायत्तता' को एक मूल्यवान शैक्षणिक लक्ष्य के रूप में लेते हैं। डीयरडन के अनुसार विवेक पर आधारित स्वायत्तता के दो पहलू हैं। "इनमें से पहला नकारात्मक है। यह है सत्ता-सम्पन्न लोगों से स्वतंत्र होना। दोनों तरह की सत्ता से- वे जो निर्देशित या नियत करते हैं कि मुझे क्या मानना चाहिए, और वे भी जो मुझे अकारण आदेश देते हैं कि मुझे क्या करना चाहिए। इसी के पूरक सकारात्मक पक्ष हैं : पहला, चीजों की सच्चाई की अपने लिए स्वयं जांच करना,

चाहे अनुभव से सीखकर अथवा दूसरों के अनुभवों का समीक्षात्मक विश्लेषण करके। दूसरे, मनन करना, अपनी मंशा तय करना और यह चुनना कि मैं क्या करूंगी, जिस पर मैं स्वयं चुने मूल्यों की कसौटी के अनुसार विश्वास करूं। परन्तु इस प्रकार से दोनों ही समझ व चयन, विचार व कर्म, सत्ता से मुक्त होंगे और विवेक पर आधारित होंगे।<sup>1</sup> हमें यहां शिक्षा के इस लक्ष्य की पैरवी करने की

आवश्यकता नहीं है, न ही हमें 'विवेक आधारित व्यक्तिगत स्वायत्तता' की डीयरडन की परिभाषा का पक्ष लेने की जरूरत है। हम यहां पर इस लक्ष्य और परिभाषा को केवल इसलिए ले रहे हैं क्योंकि हमें 'स्तर सापेक्ष लक्ष्यों' की समस्या से जूझना है। इसलिए, फिलहाल, हम चाहे इससे असहमत भी हों, हम इसे चर्चा जारी रखने के लिए मान लेते हैं।

क्या एक बच्ची किसी स्कूल में, मानें शेखावटी में, छः साल की उम्र में, डीयरडन के आशय से स्वायत्त हो सकती है ? इस लक्ष्य का, ऐसे स्कूल में इस बच्ची को पढ़ाने वाले एक शिक्षक के लिए क्या अर्थ हो सकता है ? हमने डिवी को ऊपर उद्धृत किया है, जिसमें उन्होंने आगाह किया है कि "तय किए गए लक्ष्य मौजूदा परिस्थितियों से फलित हुए होने चाहिए। ये इस आकलन पर आधारित होने चाहिए कि क्या कुछ पहले से घट रहा है; साथ ही परिस्थिति में क्या कुछ संसाधन व कठिनाइयां हैं ?" उस स्कूल में छः साल की एक बच्ची क्या जानती है, क्या समझती है, किसमें रुचि ले सकती है, और यदि हम डिवी को सही मायनों में लागू करें, ऐसा क्या है जो 'फलित हो' कर हमारे चयनित लक्ष्य 'विवेक पर आधारित व्यक्तिगत स्वायत्तता' में बदल जाएगा ? विकास की और सीखने की, ऐसी कौन-सी प्रक्रियाएं हैं जो 'पहले से ही घट रही हैं', जो कि ऐसे लक्ष्य में फलीभूत हो सकती हैं ? यदि हम बच्ची के विकास के मौजूदा स्तर को ध्यान में रखने तथा डिवी की शर्त (कि वह मौजूदा परिस्थितियों से फलित होना चाहिए) और हमारे अपने चुने स्वायत्तता के लक्ष्य के विषय में गंभीर हैं, तो हमें इनमें आपस में कोई जुड़ाव ढूंढना पड़ेगा। लेकिन यह जुड़ाव खोजना इस पर निर्भर कर सकता है कि हम छः साल की बच्ची के लिए स्वायत्तता के अर्थ को किस तरह समझते हैं ? संभवतः, स्वायत्तता कोई ऐसी चीज नहीं है जो अचानक प्रकट हो जाए, जो कि क्षण 'क' में न मौजूद हो, और क+ण में अचानक प्रकट हो जाए ? शायद यह धीरे-धीरे विकसित होती हो। शायद कोई भी ऐसा बिन्दु न हो जहां स्वायत्तता शून्य हो,

**क्या यह हो सकता है कि छः साल की उम्र में बच्ची को अपने विचारों, भावनाओं और असहमतियों को व्यक्त करने के लिए प्रेरित करने से स्वायत्तता के विकास की अच्छी बुनियाद बनती हो ? क्या हमारे लक्ष्य और पाठ्यक्रम कुछ विशेष तौर-तरीकों की ओर इंगित करते हैं ?**

और कोई ऐसा भी न हो जिसे हम 'पूर्ण स्वायत्तता' कहकर वर्णित कर सकें- शायद सबका सब सापेक्ष स्वायत्तता का ही मसला है। ऐसी स्थिति में, शायद छः साल की बच्ची में स्वायत्तता के कुछ तंतु हों, जिन्हें हमारे वांछित स्तर तक विकसित किया जा सके। यदि ऐसा है, तो फिर क्या यह विकास एक निर्बाध प्रवाह होगा या इसमें पृथक करने योग्य स्तर होंगे ? क्या इसमें स्तरों को

अलग-अलग चिन्हित करना उपयुक्त होगा, जैसे पहला स्तर 6 से 10 वर्ष की उम्र तक, दूसरा स्तर 11 से 14 तक, तीसरा स्तर 14 से 17 तक ? हम इन स्तरों को अलग करने की उम्र कैसे तय करें ? किस स्तर में हम कितनी अपेक्षा रखें ? क्या इन स्तरों में केवल स्वायत्तता की मात्रा की ही बात करें, या फिर यह स्वायत्तता के 'प्रकार' का भी मसला है ? हम निश्चय ही कम से कम तीन पक्षों को अलग कर सकते हैं: मात्रा, क्षेत्र और प्रकार। मात्रा का अर्थ होगा कितनी स्वायत्तता, उदाहरण के लिए, एक ग्रामीण बच्ची अकेले स्कूल जा सकती है, परन्तु नजदीक के शहर नहीं जा सकती। स्वायत्तता के क्षेत्र को ऐसे समझा जा सकता है : क्या खेलना है, यह तय करने में स्वायत्तता, पर पैसे का उपयोग करने में नहीं। स्वायत्तता के प्रकार से यहां मेरा आशय है- वह तत्व जो 'सामाजिक परम्परा के सीधे सरल मसलों में 'स्वायत्तता' और सामाजिक परम्परा पर सवाल करने और पुनः परिभाषित करने में स्वायत्तता में भेद कर पाए। इस प्रकार, यदि हम बच्ची को एक उच्च स्तर की स्वायत्तता हासिल करने में मदद करना चाहते हैं, तो हमें स्तर सापेक्ष लक्ष्यों के सवाल से जूझना पड़ेगा। इन लक्ष्यों का अर्थ होगा 'शिक्षा के लक्ष्य जो कि एक विशिष्ट आयु वर्ग के लिए परिभाषित किए गए हैं' और कोई भी शिक्षाक्रम स्कूल स्तर पर तब तक प्रयुक्त नहीं हो सकता जब तक इन्हें स्पष्ट और सही रूप में व्यक्त न किया जाए।

शिक्षा में वांछित क्षमताओं को शिक्षाकर्म और केवल इसी कर्म के जरिए हासिल हुआ माना जाता है। इसलिए शिक्षा की पहली दो समस्याओं- लक्ष्यों की समस्या तथा स्तर सापेक्ष लक्ष्यों की समस्या-के प्रयोगात्मक हल मिल जाने के बाद अब हम तीसरी समस्या से मुखातिब होते हैं, जो है- विषयवस्तु के चुनाव और नियोजन की समस्या। इस समस्या को और सटीक तरीके से समझने के लिए, हम शेखावटी गांव की एक बच्ची के उदाहरण को थामे रहते हैं। मानते हैं कि हमें उस बच्ची के ज्ञान व कौशलों की एक संतोषजनक

1. आर.एफ. डीयरडन, फिलॉसफी ऑफ प्राइमरी एज्युकेशन, रूटलेज एण्ड केगन पॉल, लंदन, 1967

जानकारी है और उसकी सीखने की क्षमता से भी हम काफी वाकिफ हैं। हमने पहले ही माना हुआ है कि हम शिक्षा के जरिए 'विवेक आधारित व्यक्तिगत स्वायत्तता' के लक्ष्य का अनुसरण करेंगे। हममें यह भी सहमति है कि स्वायत्तता का विकास बच्ची की मौजूदा स्थिति से एक वांछित मानसिक क्षमता के स्तर तक धीरे-धीरे आगे बढ़ने का मसला है। अब हमारे शिक्षण कार्य को पटरी पर रखने के लिए हमें इस विकास के कुछ उपयुक्त स्तर परिभाषित करने होंगे। मान लो, हम तय करते हैं कि ग्यारह साल के अंत तक हमारी छात्रा संतोषजनक रूप से इन चीजों में स्व-निर्भर हो जाएगी। (1) अपनी पोशाक के चुनाव में, जिसमें कपड़ा, रंग, प्रचलित चलन व मूल्य आदि पहलू हैं, (2) आनन्द के लिए पढ़ने हेतु किताबें चुनने में। परन्तु हम अभी यह अपेक्षा नहीं करते कि वह इनमें स्वायत्त होगी, (3) अपनी शिक्षा के मार्ग का चुनाव करने में, (4) यह चुनने में कि वह किससे शादी करेगी और (5) यह निर्णय लेने में भागीदार होने में कि भारत में अगले पांच साल में किसका शासन होना चाहिए। इससे शायद यह झलक मिल सके कि हम किन क्षेत्रों में, किस हद तक, किस प्रकार की स्वायत्तता की अपेक्षा इस बच्ची के लिए करते हैं।

अब समस्या यह खड़ी होती है कि हम इस बच्ची को क्या सिखाएं, जिससे वह आत्म-विश्वास से अपनी पोशाकें और पुस्तकें चुन सके, सो भी उन मापदण्डों के अनुसार जिन्हें वह समझती हो और यदि जरूरत पड़े तो दूसरों को समझा भी सकती हो या जिनकी वकालत भी कर सकती हो। कौन-सा ऐसा ज्ञान है जो कि इस प्रकार के विकास को बढ़ावा दे सकता है ? कौन से ऐसे अनुभव या ज्ञान हैं, यदि हैं तो, जो उस पर 'अविवेकशील' ढंग से प्रभाव डाल सकते हैं, जैसे वे जो उसे सत्ता की दया पर छोड़ दें या ऐसे अविचारित प्रभाव जो उसके चुनावों पर असर डालकर दूसरों के लाभ के लिए इस्तेमाल किए जा सकते हों ? एक शिक्षक यह तय कर सकता है कि : वस्त्र की गुणवत्ता के बारे में जानना- मजबूती, भिन्न-भिन्न मौसमों के अनुसार उपयुक्तता, रंग विन्यास तथा स्थानीय सौन्दर्य संवेदना का अनुभव और जो लोग वस्त्र का उत्पादन करते हैं उनकी स्थिति के बारे में जानना बच्ची को सचेत चुनाव करने में मदद करेंगे। साथ ही, किस प्रकार रेशम तथा खालों के बने वस्त्र उपलब्ध होते हैं- हजारों रेशम के कीड़ों को जिंदा उबाल कर और जानवरों को मारकर- ये भी उसे चुनाव करने के लिए आधार देंगे। दूसरी ओर, वस्त्रों के विज्ञापनों का अत्यधिक प्रभाव जो उसकी पोशाक और कपड़े के चुनाव को मनुष्य की निम्न प्रवृत्तियों से अथवा असंतुष्ट इच्छाओं से जोड़ते हों, उसके अंदर स्वायत्तता के स्वस्थ विकास में बाधा डालेंगे।

यह विचार श्रृंखला यह दर्शाती है कि क्या सिखाना है, उसमें कैसे

प्रयोगात्मक चुनाव किए जा सकते हैं। क्योंकि जो कुछ बच्ची सीखती है वह एकबारगी से नहीं सीखती, बल्कि उसमें थोड़ा-थोड़ा जोड़कर निर्माण करती है; साथ ही, उसके पास हमेशा ही जुड़ावों का एक समृद्ध जाल होता है, इसलिए जो सीखना है उसका नियोजन भी बहुत महत्त्वपूर्ण है। क्या सिखाना है और उसके नियोजन के लिए चयन करने के बहुत से आधार होंगे- जैसे बच्ची का प्रारंभिक ज्ञान, उसकी रुचि, स्थानीय समझ व ज्ञान, अवधारणात्मक अन्तःसंबंध और शिक्षा के मनोविज्ञान द्वारा उपलब्ध कराए गए मापदण्ड।

ऊपर दिया गया वर्णन विषयवस्तु के चुनाव और नियोजन की समस्या का एक सरलीकृत स्वरूप है। अपने पूर्ण विकसित स्वरूप में शिक्षाक्रम बनाने वालों को इस प्रकार के सवालों से जूझना पड़ता है- ज्ञान, कौशल, सामान्य सिद्धान्तों, अन्वेषण की पद्धतियों और प्रमाणीकरण प्रक्रियाओं के बीच अंतर करना पड़ता है और तय करना पड़ता है कि किस स्तर में किसे अपेक्षाकृत ज्यादा महत्त्व दिया जाए। इसमें एकीकृत बनाम विषय आधारित शिक्षाक्रम, कौशल आधारित बनाम जानकारी आधारित बनाम क्षमता आधारित शिक्षाक्रम जैसे सवालों से यहां जूझना पड़ता है। कोई भी शिक्षाक्रम जो कक्षाई गतिविधियों के जरिए चलाया जाएगा, उसे उन बुनियादी सिद्धान्तों को इंगित करना पड़ेगा जिनका वह विषयवस्तु और उसके नियोजन के बारे में सचेतन चुनाव करने में प्रयोग करता है। बिना इन सिद्धान्तों को स्पष्ट किए, शिक्षाक्रम और पाठ्यक्रम के बीच कोई स्पष्ट संबंध सुनिश्चित नहीं किया जा सकता और विषयवस्तु की सारी चर्चा अर्थहीन हो जाती है। यद्यपि हमने बच्ची की मौजूदा क्षमताओं और शिक्षा के लक्ष्यों में जुड़ाव बनाने के लिए काफी मात्रा में कार्य किया है या दूसरे शब्दों में कहें तो, एक छः साल की बच्ची के लिए शिक्षा के लक्ष्यों का अर्थ खोजने के लिए मशक्कत की है, तथापि चिन्तनशील शिक्षण के लिए तैयार किए जाने वाले अवधारणात्मक उपकरण अभी भी अधूरे हैं। एक बार जब हमारे पास विषयवस्तु-चयन और नियोजन के लिए मापदण्ड तैयार हैं (केवल प्रयोगात्मक रूप से, क्योंकि अगले तीन चरण उनमें लगातार सुधार की मांग करेंगे), तो अगली समस्या शिक्षण पद्धतियों की है। यानी, हमें कैसे पढ़ाना चाहिए ? यह केवल चुनी हुई विषयवस्तु को बच्ची को सिखाने में महारत का मसला नहीं है, जैसे कि भिन्न-भिन्न वस्त्रों के उद्गम और गुणों को बताने का है। हमें बच्ची को ये चीजें सिखाने का मकसद याद रखना होगा ताकि वह चयन में स्वायत्त हो सके। इसलिए उन तरीकों के अलावा जो उसे समझने, याद रखने और ज्ञान का सृजन करने में मदद करे, शिक्षिका को अपनी पद्धतियों के चुनाव के बारे में भी सजग रहना होगा ताकि उसका दूरगामी लक्ष्य, यानी स्वायत्तता, बढ़ सके। यह संभव है कि कपड़े के गुणों की सावधान और बलात् धोटाई/रटाई प्रभावशाली कंठस्थीकरण



कर सके। यहां पर हमें यह भी सोचना होगा : क्या बच्ची घंटों तक चुप रहने और उससे रटने को कहने से स्वायत्तता का इच्छित विकास बाधित नहीं होगा ? क्या यह हो सकता है कि छः साल की उम्र में बच्ची को अपने विचारों, भावनाओं और असहमतियों को व्यक्त करने के लिए प्रेरित करने से स्वायत्तता के विकास की अच्छी बुनियाद बनती हो ? क्या हमारे लक्ष्य और पाठ्यक्रम कुछ विशेष तौर-तरीकों की ओर इंगित करते हैं ? क्या वे किन्हीं अन्य पद्धतियों पर आपत्ति करते हैं ? पद्धति 'क' पद्धति 'ख' से बेहतर है, यह तय करने के लिए हमने क्या मापदण्ड इस्तेमाल किए हैं ? बच्ची की आज की अभिरुचियों और क्षमताओं तथा वांछित क्षमताओं व वृत्तियों के बीच में पुल बनाने के लिए कुछ मापदण्डों को चिन्हित करना अत्यावश्यक है, जो स्वीकार करने और न करने योग्य शिक्षण पद्धतियों के बीच में अंतर कर सके। स्वीकृत पद्धतियों में भी बेहतर और खराब तरीकों के बीच अन्तर कर सकें। हालांकि विषयवस्तु के चुनाव और नियोजक के सिद्धान्तों की तरह यहां भी पाठ्यचर्या नियोजक तय कर सकते हैं कि कक्षा में उपयुक्त असल तरीकों की बारीकियों में न जाकर, उस आधार को चिन्हित करना काफी होगा जिसके बलबूते ये निर्णय लिए जा सकें।

बच्चों को पढ़ाने के अनुभव दर्शाते हैं कि उनके शिक्षण को बेहतर बनाने के लिए विविध प्रकार की सामग्री का बहुत बेहतरीन प्रयोग किया जा सकता है। पाठ्यपुस्तक सबसे आम और सबसे महत्वपूर्ण शिक्षण सामग्री मानी जाती है। यह बच्चे और शिक्षक दोनों की सहायता करती है, क्योंकि यह अक्सर

उस नियोजित विषयवस्तु के अनुसार बनी होती है जिसकी शिक्षा देनी है। शिक्षण पद्धतियों पर विवाद की तरह ही जैसे बाल केन्द्रित, गतिविधि आधारित, सत्तावादी, तोता रटन्त इत्यादि में से कौन-सा चुना जाना चाहिए; इसी प्रकार पाठ्यपुस्तकों और शिक्षण सामग्री के विषय में भी विवाद है कि क्या बेहतर सामग्री मानी जाएगी। हम अपने वर्तमान विमर्श में इसे अच्छी पठन-पाठन सामग्री की समस्या कहेंगे। सारी पठन-पाठन सामग्री, (पाठ्यपुस्तकों समेत) को हमारे द्वारा चयनित विषयवस्तु और शिक्षण पद्धतियों के अनुसार होना आवश्यक है। अक्सर सामग्री की उपलब्धता भी हमारे द्वारा पद्धति के चुनाव को या स्तर विशेष में क्या पढ़ाया जाए, इसे प्रभावित कर सकती है। परन्तु यह उलट प्रभाव सीमित है और चयन हमेशा स्वीकृत सामान्य सिद्धान्तों से मार्गदर्शित होता है। एक बार फिर,

शिक्षक को कक्षा में कार्य करने के लिए जिन वैचारिक उपकरणों की आवश्यकता है, उनमें अच्छी पठन-पाठन सामग्री के लिए मार्गदर्शन या मापदण्ड भी एक आवश्यक हिस्सा होंगे।

प्रश्नों का एक अन्य महत्वपूर्ण समूह, जिसका हमें सामना करना है, मूल्यांकन से संबंधित है। एक बार जब हमारे लक्ष्य, उद्देश्य, विषय-वस्तु, पद्धतियां और सामग्री तैयार है, हम बेशक शिक्षण आरंभ कर सकते हैं। परन्तु कभी न कभी एक शिक्षिका के सामने यह सवाल उठ खड़ा होगा कि वह अपने शिक्षण में सफल हो रही है या नहीं। हम यह कैसे जानें कि जो हम सिखाने की कोशिश कर रहे हैं, बच्चे उसे सीख भी रहे हैं या नहीं ? हम यह भी कैसे जानें कि जो हम सिखा रहे हैं, यदि वह ठीक से सीखा भी जा रहा है तो भी क्या वह हमारे द्वारा निरूपित शिक्षाक्रम के उद्देश्यों और शिक्षा के दूरगामी लक्ष्यों

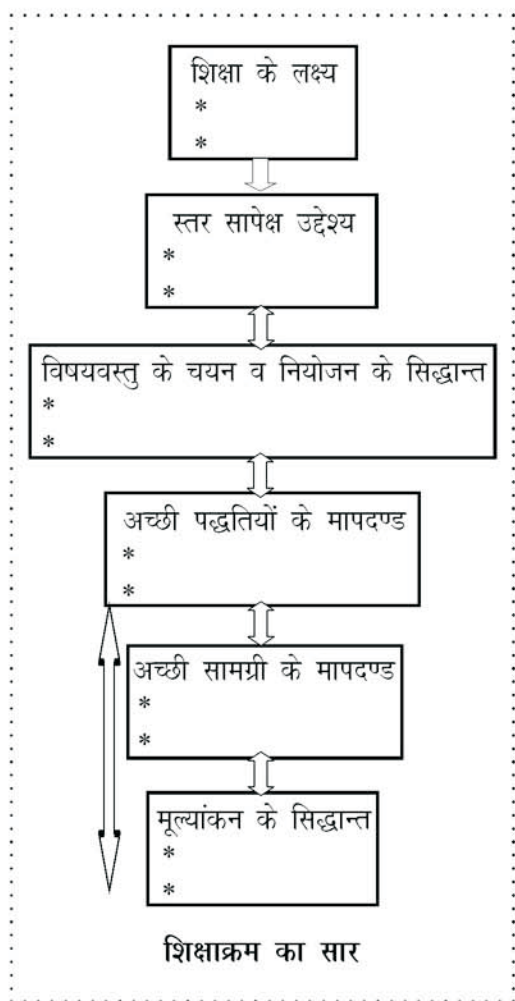
से मेल खाता है ? इसलिए, हमें मूल्यांकन की एक योजना चाहिए जो कि एक विशेष बच्ची के सीखने के साथ ही हमारी पूर्ण योजना के कारगर होने का परीक्षण करती है : जिसमें उद्देश्य, पद्धतियां, सामग्री सब कुछ आते हैं। तो पहले प्रयुक्त हो रहे मुहावरे में, इसे हम मूल्यांकन की समस्या कह सकते हैं।

मूल्यांकन के परिणाम हमें बता सकते हैं कि क्या हमें बेहतर शिक्षण पद्धतियों की आवश्यकता है। और ये परिणाम हमारे स्तर सापेक्ष उद्देश्यों तक जाकर हमारी योजना पर प्रभावी हो सकते हैं, यद्यपि अधिक तात्कालिक प्रभाव सामग्री और तौर-तरीकों पर होगा। मूल्यांकन की एक अच्छी योजना हमें चिंतन करने का माध्यम प्रदान करेगी। यह असल में एक बच्ची की सामाजिक-आर्थिक हकीकत

और शिक्षा के सामान्य आदर्शों के बीच शिक्षाक्रम को एक गत्यात्मक आदान-प्रदान की जगह बनाने में मदद कर सकती है। यहां पर यह कहना पर्याप्त होगा कि मूल्यांकन के सिद्धान्त भी शिक्षाक्रम में स्पष्ट रूप से निरूपित होने चाहिए।

इस प्रकार, हम कह सकते हैं कि एक बच्ची को, जहां से वह स्कूल में प्रवेश करती है वहां से, एक वांछित मानसिक व शारीरिक विकास तक प्रगति करने में मदद देने के लिए हमें निर्णय लेने में कई समस्याओं का सामना करना पड़ेगा। इन समस्याओं की प्रतिक्रिया में, कई सारे सैद्धान्तिक मत निर्मित किए गए हैं। अक्सर इन्हें व्यक्त नहीं किया जाता, इसलिए ये अविवादित रहते हैं। परन्तु तब भी ये मत निर्णय लेने वालों के दिमाग में अचेतन रूप से रहते हैं, अन्यथा उनके निर्णयों का कोई तार्किक आधार ही नहीं होगा।

हमने इस लेख में अभी तक चर्चा जो की है वह चित्र रूप में नीचे अंकित है :



यहां दर्शाए छः खाने चयन के छः बड़े क्षेत्र दर्शाते हैं। उनके नाम दिखाए गए हैं, पर वर्णन नहीं दिया गया है। खाने में दिए गए सितारे (\*) का अर्थ है कि वहां पर कुछ लिखा जाना है। हमने 'विवेक पर आधारित स्वायत्तता' के विकास को शिक्षा के सामान्य लक्ष्य के रूप में, उदाहरण के तौर पर लिया है। यह इन सितारों में से एक के सामने लिखा जा सकता है। इसी प्रकार जब हम भिन्न-भिन्न खानों के बीच अन्तःसंबंधों और संगति को बनाए रखते हुए, सारे खानों को उपयुक्त ढंग से भर देंगे, तब हमारे पास शिक्षाक्रम का एक उदारहण होगा। जैसा यहां समझा जा सकता है, शिक्षाक्रम न तो एक दस्तावेज है, न ही यह एक अनुभवों की शृंखला है जैसा कई लोग इसे पेश करते हैं। यह एक बच्ची के सीखने को अग्रसर करने की एक योजना है। बच्ची के वर्तमान स्तर से शुरू होने वाली यह

योजना सीखने के सभी जरूरी पक्षों और आयामों को चिन्हित करती है, यह कारण बताती है कि क्यों यह या वह सीखना जरूरी माना गया और शिक्षा के किस लक्ष्य का वह पालन कर रही है। यह योजना स्तर सापेक्ष उद्देश्यों को भी परिभाषित करती है, और यह भी कि क्या विषयवस्तु पढ़ाई जानी है और उसे कैसे नियोजित करना है। साथ ही, यह शिक्षण पद्धतियों व मूल्यांकन के सामान्य सिद्धान्तों की सिफारिश करती है और अच्छी पठन-पाठन सामग्री के लिए मापदण्ड भी दर्शाता है। ऐसी योजना, लगभग हमेशा ही एक या अधिक दस्तावेजों में रहती है और शिक्षक के मार्गदर्शन में बच्चों के लिए आयोजित अनुभवों के जरिए लागू की जाती है। पर यदि अपना ध्यान योजना पर केन्द्रित रखें और दस्तावेज को इस पर आश्रित एक वास्तविकता मानें; साथ ही अनुभवों की कड़ी को एक योजना के लागू करने के रूप में देखें, तो यह हमें चिंतन करने में मदद करती है।

इस विषय को इस प्रकार रखकर, अर्थात् आवश्यक प्रश्नों की सूची बनाकर, उन्हें एक ढांचे में रखना कइयों को बहुत अवास्तविक या सरलीकृत लग सकता है, क्योंकि बहुत से अच्छे शिक्षक और बहुत से अच्छे स्कूल ऐसी बारीकियों में गए बिना शिक्षण करते हैं। मैं इस प्रश्न को तब लूंगा जब मैं सारी संरचनाओं और प्रारूपों का परिचय दे चुका होऊंगा।

### कार्यान्वयन के लिए विस्तार

शिक्षाक्रम या फिर कहा जा सकता है 'शिक्षाक्रम का सार तत्व', जैसे यहां परिभाषित किया गया है, निर्णय लेने के लिए एक अवधारणात्मक ढांचा ज्यादा है, बजाए इस विवरण के कि, कक्षा में क्या किया जाना है। ऊपर सुझाए गए ढांचे के अधिकतर खानों में कार्यान्वयन-सिद्धान्तों और मापदण्डों की जरूरत है, बजाए विस्तृत विवरणों या सूचियों के। उदाहरण के लिए, यह उन 'सिद्धान्तों' की मांग करता है जिनके आधार पर विषयवस्तु का चयन व नियोजन शिक्षार्थियों के लिए किया जा सके, और सिखाई जाने वाली 'चयनित व नियोजित विषयवस्तु' की मांग नहीं करता। परन्तु कक्षा में कार्य करने के लिए अवश्य ही चयनित व नियोजित विषयवस्तु चाहिए, बच्चों के साथ काम करने और कक्षा-संगठन के विस्तृत तरीके चाहिए, असल पठन-पाठन सामग्री चाहिए, न कि केवल मापदण्ड जिनके आधार पर सामग्री का विकास या चयन हो सकता हो। इसका अर्थ है कि शिक्षाक्रम के फलक को पूरा करने के लिए 'शिक्षाक्रम सार तत्व' के आधार पर और अधिक विस्तार करने की जरूरत होगी।

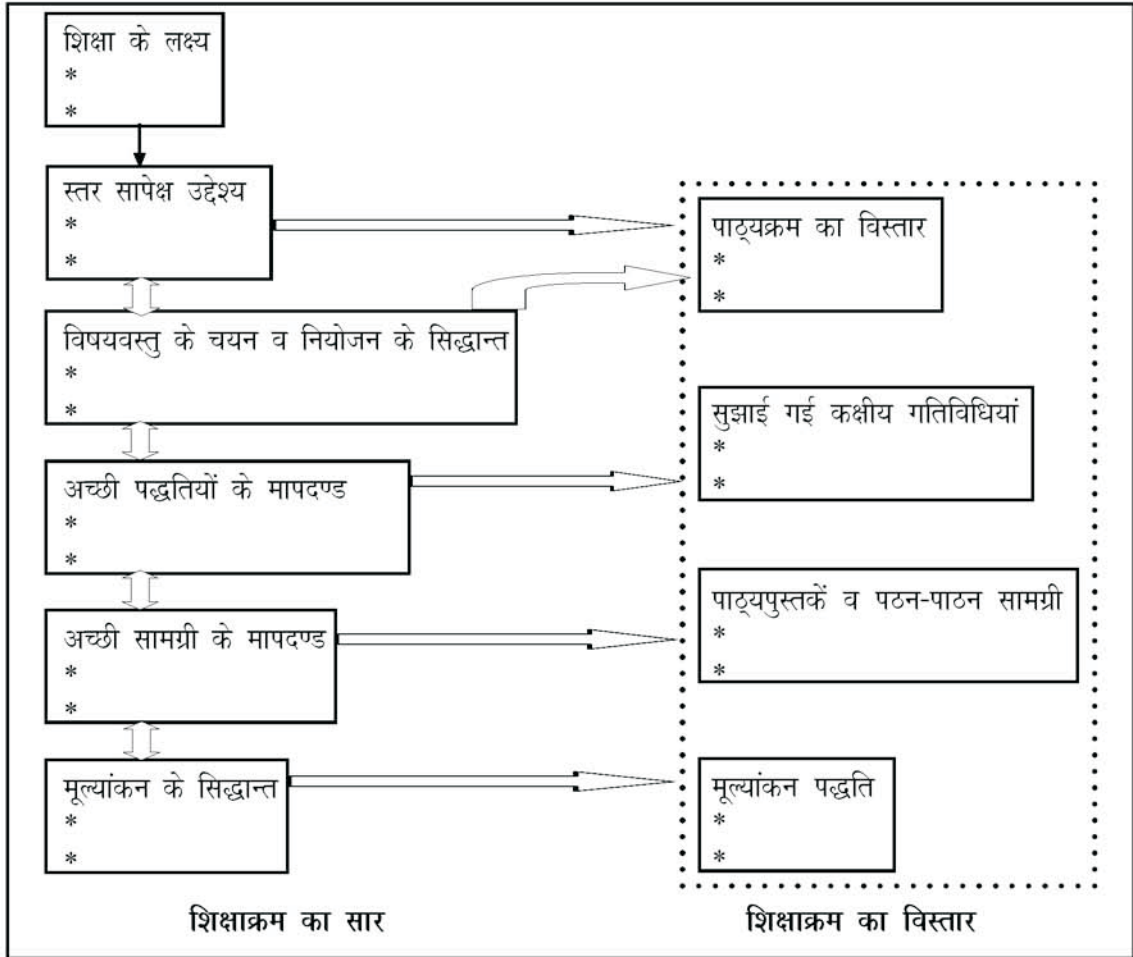
'स्तर सापेक्ष उद्देश्यों' के और 'विषयवस्तु चयन और नियोजन के सिद्धान्तों' के आधार पर आपस में संबंधित अवधारणाएं, जानकारीयां, ज्ञान निर्माण के सिद्धान्त, प्रमाणीकरण मापदण्ड, कौशल आदि का

निर्माण करके उस विशिष्ट स्तर के लिए उपयुक्त संगठित ज्ञान का एक बस्ता चाहिए। तब हमारे पास उस स्तर के लिए पाठ्यक्रम होगा। जाहिर है कि पाठ्यक्रम में क्या आना चाहिए अथवा नहीं, यह हमारे द्वारा प्रयुक्त शिक्षण पद्धतियों द्वारा तय होगा। परन्तु, ऐसे अवसर भी होंगे जब हम काफी आश्वस्त होंगे कि कोई विशेष पाठ अवश्य ही कक्षा में लिया जाना चाहिए और उसके शिक्षण के उपयुक्त तरीके तलाशेंगे। यदि किसी स्थिति में हम महसूस करें कि पाठ 'x' को चरण 'y' में अवश्य ही पढ़ाया जाना चाहिए, लेकिन उसे उस आयु वर्ग के बच्चों को परिचित करवाने के लिए कोई उपयुक्त तरीका नहीं है, तब शायद हमें 'x' को पढ़ाने का निर्णय स्थगित करना पड़े, जब तक कि हमें कोई उपयुक्त तरीका हासिल न हो जाए।

इसी प्रकार, असल शिक्षण की आवश्यकता होगी : पद्धति का विस्तृत वर्णन, पर्याप्त मात्रा में पठन-पाठन सामग्री और साथ ही मूल्यांकन व्यवस्था। नया परिदृश्य अब नीचे दिए चित्र जैसा कुछ होगा :

शिक्षाक्रम का विस्तार शिक्षक को कक्षा में शिक्षण की असली गतिविधियां उपलब्ध करवाता है, जबकि शिक्षाक्रम का सार उसे एक सीमा तक, उन गतिविधियों को अपनाने का तार्किक आधार उपलब्ध करवाता है। इस प्रकार कक्षाई गतिविधियों को शिक्षा के व्यापक लक्ष्यों से जोड़ा जा सकता है। हम कह सकते हैं कि यह अवधारणात्मक ढांचा शिक्षक को सिद्धान्त और कर्म के बीच एक गतिशील 'संवाद' कायम करने में सक्षम बनाता है- शैक्षिक आदर्शों और कार्य के बीच संवाद।

मैंने अभी तक जो किया है वह है : जब हम बच्चों के साथ कक्षा में कार्य करना शुरू करते हैं तब हमारे पास कुछ 'विषयवस्तु' होती है जो हम उन्हें सिखाना चाहते हैं और अपेक्षा करते हैं कि वे सीखेंगे। हमारे पास शिक्षण की, कम से कम दिमाग में, कुछ 'पद्धतियां' होती हैं। हम कुछ सामग्री उपयोग करते हैं- कम अथवा प्रचुर; और हमें कुछ आभास होता है कि 'कुछ सीख पाने' का क्या अर्थ है और इस सीखने को दर्शाने वाले क्या सूचक होंगे। दूसरे



शब्दों में हमारे पास है : एक पाठ्यक्रम, एक शिक्षाशास्त्र, पठन-पाठन सामग्री का एक सेट और मूल्यांकन की व्यवस्था। यह शिक्षण की शुरुआत करने के लिए न्यूनतम शैक्षिक तैयारी होगी। तथापि, इसका अर्थ यह नहीं है कि कक्षाई गतिविधियों का हरेक पहलू शिक्षक के दिमाग में सुपरिभाषित व स्पष्ट है। अक्सर, शिक्षक के पास इकलौती वस्तु एक पाठ्यपुस्तक होती है। पाठ्यपुस्तक पाठ्यक्रम का ठोस रूप बन जाती है। उसमें जो कुछ निहित है, सब पढ़ाया जाना है; तो यह एक शिक्षाशास्त्रीय मार्गदर्शक बन जाती है जिसे पढ़ना है, जिसके बड़े अंशों को बार-बार पढ़कर याद करना है। वह मूल्यांकन व्यवस्था भी बन जाती है। हर पाठ के अंत में दिए प्रश्नों का मौखिक और लिखित रूप में उत्तर देना है, जिसमें पुस्तक के मूल पाठ को ही पुनः उद्धृत करना है। यहां पाठ्यपुस्तक ही कक्षा के सभी पहलुओं का मूर्त रूप बन जाती है। परन्तु पाठ्यपुस्तक को इस प्रकार देखना व बिना उद्देश्य से उसका संबंध समझे पढ़ाना पूर्णतः विचारहीन है। यह बहुत बांधने वाली, ढर्रे पर चलने वाली उबाऊ गतिविधि बन जाती है, जिसका विकास से, पढ़ाए जा रहे बच्चों की समझ व अन्य क्षमताओं से कोई विशेष लेन-देन नहीं रहता। क्योंकि यहां पर शिक्षक की गतिविधियों को निर्देशित करने वाला अवधारणात्मक मॉडल उसे अपने स्वयं के अनुभवों से सीखने के अयोग्य बनाता है, उसकी शैक्षणिक गतिविधि को मानव जीवन से जोड़ने के अयोग्य बनाता है और बच्चों के अनुभवों को संग में लेने के अयोग्य बनाता है। शिक्षिका और उसके साथी शिक्षकों को पाठ्यपुस्तक की तानाशाही से मुक्त करने के लिए यह आवश्यक शर्त है (केवल आवश्यक, पर्याप्त नहीं) कि शिक्षिका अपनी गतिविधि की प्रकृति और उद्देश्य को समझे; केवल तभी वह कक्षा में एक गतिशील निर्णय लेने वाली बनेगी और पाठ्यपुस्तक के साथ नहीं वरन् बच्चों के दिमागों के साथ रिश्ता कायम कर पाएगी। यदि एक शिक्षिका यह समझती है कि पाठ्यपुस्तक केवल एक उपकरण है, जो कि एक सुविधाजनक संगठित इकाई है जो एक स्थान पर उस सबको इक्कट्टा कर देती है जिसे बच्चों द्वारा सीखना अपेक्षित है, वह पाठ्यक्रम और पाठ्यपुस्तक के अवधारणात्मक अंतर के बारे में सजग हो जाती है। मानसिक स्तर पर इस भेद को समझ पाना एक आवश्यक बौद्धिक (या कहें सैद्धान्तिक) शर्त है, जिससे वह पाठ्यपुस्तक से परे देख पाएगी और सीखने के दूसरे अनुभवों और स्रोतों को खोज सकेगी। दूसरी ओर, पाठ्यपुस्तक तथा अन्य अनुभवों/स्रोतों के बीच में चुनाव करने की संभावना उसे अपने चुनावों के बारे में विचारशील बनाती है और अंततः एक बेहतर पाठ्यपुस्तक की भी संभावना उपजती है। इसी तरह के तर्क शिक्षण पद्धतियों, मूल्यांकन, पाठ्यपुस्तक व अन्य सामग्री के बीच सैद्धान्तिक अंतर के बारे में दिए जा सकते हैं।

मैं जो पैरवी करना चाह रहा हूँ वह है : व्यक्ति के खुद के अनुभव से सीखने के लिए विचारशील शिक्षण का विकास एक आवश्यक शर्त है। विचारशील कर्म के लिए सैद्धान्तिक मॉडल आवश्यक हो जाते हैं, जिनके जरिए अनुभव को बांटने लायक ज्ञान में बदला जा सके, जिसकी सार्वजनिक रूप से समीक्षा हो सके और वह ज्ञान जिन स्थितियों से उपजा है, उसके अतिरिक्त भी अन्य परिस्थितियों में उसका उपयोग हो सके। मैं तो यह भी रेखांकित करना चाहूंगा कि कोई ऐसी शिक्षिका नहीं है जिसको पाठ्यक्रम, शिक्षाशास्त्र, सामग्री और मूल्यांकन की जानकारी न हो। परन्तु उनमें से बहुत कम हैं जिन्होंने इन्हें स्पष्ट रूप से चिन्हित करके, अच्छी तरह जांच करके और ज्यादा सामान्य सिद्धान्तों व मान्यताओं के आधार पर जांच कर चुना हो।

इसी प्रकार बहुत कम ही शिक्षक हैं जिन्होंने कक्षा के शिक्षाकर्म के ऊपर अपने विचारों के प्रभाव को सावधानीपूर्वक देखा होगा। सैद्धान्तिक मॉडल, जो कई प्रकार के हो सकते हैं, विचारशील शिक्षाकर्म और शिक्षक की स्वायत्तता को बढ़ावा देने का एक शक्तिशाली तरीका हो सकता है। यहां पर प्रश्न यह नहीं है कि किसी का क्या मॉडल है, पर यह कि शिक्षक के पास एक मॉडल होना जरूरी है जिसे औरों के साथ साझा किया जा सके और जिस पर बहस की जा सके।

हालांकि, कक्षा में शिक्षाकर्म को पाठ्यक्रम, शिक्षाशास्त्रीय चयन, विविध पठन-पाठन सामग्री तथा मूल्यांकन व्यवस्था से जोड़ना चिंतनशील कर्म की ओर केवल पहला कदम है। क्या शिक्षित किया जा रहा है, कैसे, किस सामग्री से और उसके सीखे जाने का कैसे मूल्यांकन किया जा रहा है, इसे अवश्य ही पाठ्यक्रम आदि के शब्दों में समझाया और सोचा भी जा सकता है। परन्तु पाठ्यक्रम, शिक्षाशास्त्रीय चुनावों, पाठ्यपुस्तक आदि का क्या आधार है ? हम देख चुके हैं कि जिसे हमने शिक्षाक्रम का सारतत्व कहा, वह इन चयन के कारण को बताने वाला होना चाहिए। लेकिन, उन कारणों को स्वयं भी आगे व्याख्या की और उन्हें स्वीकृत करने के आधारों की आवश्यकता रहेगी। अत्यधिक दोहराव के बावजूद भी इस मसले को समझने के लिए एक उदाहरण लेते हैं। मान लें कि, हम चाहते हैं कि उच्च प्राथमिक स्तर के बच्चे, अपने सामाजिक विज्ञान के पाठ्यक्रम के हिस्से के रूप में, अपने गांव में लड़कों और लड़कियों के प्रति बर्ताव में अंतर पर ध्यान दें। और हम चाहते हैं कि इस बर्ताव को ध्यान से देखकर और बच्चों से बातचीत करके 'सीखा' जाए। मान लो, आप शिक्षक से पूछते हैं- "आप क्यों चाहते हैं कि बच्चे इस अंतर पर ध्यान दें और इस जानकारी को अपने दिमाग में रखें ?"



## संवाद (क)

**उत्तर :** क्योंकि यह पाठ्यक्रम में लिखा है और इम्तिहान में पूछा जा सकता है।

**प्रश्न :** यह पाठ्यक्रम का हिस्सा होना ही क्यों चाहिए ?

**उत्तर :** क्योंकि बच्चे यह समझ सकें कि लड़कियां अपनी परिवारिश और सामाजिक जीवन में किस प्रकार का नुकसान झेलती हैं।

**प्रश्न :** हम बतौर शिक्षक, यह जानने में क्यों रुचि रखते हैं कि लड़कियां क्या नुकसान झेलती हैं ?

**उत्तर :** क्योंकि यह सामाजिक न्याय, समता के मुद्दों और इनके सामाजिक-आर्थिक कारणों की बच्चों की आगे समझ का आधार बन जाएगी।

**प्रश्न :** इस ज्ञान और समझ को क्यों महत्त्व का माना जाता है ?

**उत्तर :** क्योंकि यह सामाजिक न्याय के मुद्दों के प्रति संवेदनशीलता, समानता के प्रति सम्मान और सही संतुलन पैदा करने के लिए कर्म करने की क्षमता विकसित करने का एक काफी प्रभावी तरीका हो सकता है।

बेशक, हम इसी संवाद को आगे भी बढ़ा सकते हैं और पूछ सकते हैं : हम सामाजिक न्याय के प्रति संवेदनशीलता, समता के प्रति निष्ठा और इन मूल्यों के लिए कार्य करने की क्षमता को बनाने की क्यों चिंता कर रहे हैं ? पर प्रश्नों और उत्तरों की यह छोटी-सी कड़ी उन बिन्दुओं को दर्शाने के लिए काफी है जो मैं यहां पेश करना चाहता हूं। वे हैं :

पहला, पाठ्यक्रम के एक छोटे-से टुकड़े का औचित्य ठहराने के लिए हमें ज्यादा व्यापक सिद्धान्तों और मूल्यों का हवाला देना पड़ेगा। ये सिद्धान्त और मूल्य इसकी ओर इशारा कर रहे हैं कि हम किस तरह के समाज की इच्छा करते हैं और चाहते हैं कि इंसानों को कैसे रहना चाहिए। इसको दूसरी ओर से देखते हुए, यदि समाज में इन मूल्यों को कार्यान्वित करने में हम शिक्षा का योगदान मानते हैं, तो फिर शिक्षाक्रम रूपरेखा के लिए जरूरी हो जाता है कि वह इन संबंधों को विषयवस्तु के चुनाव के लिए लागू करें।

दूसरा, एक शिक्षक जो इन अन्तःसंबंधों के बारे में सचेत है, वह इनके विकास के लिए उपयुक्त रास्ते का बेहतर चुनाव कर पाएगा। हम इसी प्रकार का संवाद कर सकते हैं कि हम बच्चों के लिए अवलोकन और साक्षात्कार का तरीका (लड़कों व लड़कियों को मिलने वाले बर्ताव में भेद जैसे) एक सरल तथ्य को

सिखाने के लिए क्यों चुन रहे हैं ? हम केवल इसे पाठ्यपुस्तक में लिख ही क्यों नहीं देते ? हम पाएंगे कि इस चुनाव को उचित ठहराने के लिए हम इंसानों के सीखने के बारे में सिद्धान्तों/मान्यताओं का हवाला दे रहे होंगे। यह एक तर्कसंगत निष्कर्ष लगता है कि (विषयवस्तु चुनाव, अच्छी पद्धतियों, सामग्री, मूल्यांकन के मापदण्ड के) जिन सिद्धान्तों को हम अपने शिक्षाक्रम के सारतत्व में व्यवस्थित कर रहे हैं, वे बड़ी मान्यताओं पर आधारित हैं : जल्दी संदर्भ देने के वास्ते हम इन्हें बुनियादी मान्यताएं कह सकते हैं। मैं यह सुझाना चाहूंगा कि जितना ज्यादा हम इन छिपी हुई मान्यताओं के बारे में सचेत होंगे, उतना ही ज्यादा हम अपने तंत्र को (पाठ्यचर्या, पाठ्यक्रम, सामग्री, मूल्यांकन तथा कक्षाक्रम आदि के माध्यम से) संगत बना पाएंगे। साथ ही, अपने कर्म के बारे में चिंतन करने के लिए हम उतने ही बेहतर तैयार होंगे और इस प्रकार, विश्वस्त पेशेवर ज्ञान का निर्माण करने के लिए उतने ही ज्यादा सक्षम होंगे। हम लचीलेपन की सिफारिश करने में उतने ही कम हिचकेंगे और जितना लचीलापन हमें हासिल है, उसे इस्तेमाल करने के लिए भी बेहतर तैयार होंगे। संक्षेप में कहें तो, मैं इसे शिक्षक की स्वायत्तता के लिए एक आवश्यक शर्त मानता हूं, और बच्चे के साथ संवेदनशील रिश्ता बनाने की गारंटी।

जिन बुनियादी मान्यताओं के सेट को एक शिक्षाक्रम रूपरेखा इस्तेमाल करती है उसमें आन्तरिक रूप से संगति होनी चाहिए, वह जितना संभव हो उतनी स्पष्टता से निरूपित किया जाना चाहिए तथा यह सारे भागीदारों को स्वीकार्य होना चाहिए। मेरी समझ में शिक्षाक्रम रूपरेखा के इस हिस्से के साथ बिल्कुल भी भटकाव में नहीं पड़ा जा सकता। एक बार हम सब इस सेट से सहमत हों, तब यह हमें चिंतनशील बहस और विषयवस्तु, तौर-तरीकों आदि के सभी विवादों को सुलझाने के लिए ठोस जमीन प्रदान करता है। परन्तु समस्या यह है कि इन सारी मान्यताओं को पूर्ण व संगत रूप से निरूपित कर पाने में सफलता हमेशा सीमित रहती है। इस क्षेत्र में काफी अच्छा काम करने का एक तरीका तो यह है कि इन बुनियादी मान्यताओं की प्रकृति और अन्तःसंबंधों की बहुत सजगता से जांच की जाए। (बुनियादी मान्यताएं और इसके विपरीत गैर-बुनियादी मान्यताओं या व्युत्पन्न (किसी अन्य मूल सिद्धान्त से उपजे) सिद्धान्तों को परिभाषित करने की समस्या को लेना बाकी है)। मैं सुझाना चाहूंगा कि इस जांच के आधार पर; (प्रकृति और अन्तःसंबंधों की), बुनियादी मान्यताएं चार, कुछ हद तक एक-दूसरे से मिलते समूहों में रखा जा सकता है जिन्हें

**पाठ्यक्रम के एक छोटे-से टुकड़े का औचित्य ठहराने के लिए हमें ज्यादा व्यापक सिद्धान्तों और मूल्यों का हवाला देना पड़ेगा। ये सिद्धान्त और मूल्य इसकी ओर इशारा कर रहे हैं कि हम किस तरह के समाज की इच्छा करते हैं और चाहते हैं कि इंसानों को कैसे रहना चाहिए।**

हम फिलहाल ये नाम दे सकते हैं- इंसानों व समाज से संबंधित मान्यताएं, ज्ञानशास्त्रीय मान्यताएं, सीखने के बारे में मान्यताएं तथा बच्ची व उसके परिवेश से संबंधित मान्यताएं।

### इंसानों व समाज से संबंधित मान्यताएं

हम शिक्षा के जरिए जिन मूल्यों को बढ़ावा देना चाहते हैं, और जो हमारे सारे शिक्षाक्रम संबंधी प्रयत्नों को दिशा देते हैं, वे स्वयं उन धारणाओं से उपजते हैं जो हम इंसानों के बारे में और एक वांछनीय समाज के बारे में रखते हैं। इस क्षेत्र में एक ठोस बुनियादी वाक्य हो सकता है : 'हम एक विविधतापूर्ण, लोकतांत्रिक समाज चाहते हैं जो न्याय, समता और स्वतंत्रता पर आधारित हो।' या फिर एक नजदीकी संबंधित सामाजिक दर्शन हो सकता है : 'स्वायत्त मनुष्यों के स्वायत्त समूह जो कि परस्पर सराहना और ज्ञान में एक-दूसरे से जुड़े हों।' ये केवल उदाहरण हैं। हम यहां बताई कुछ बातों के अलावा बहुत-सी चीजें मान लेते हैं। परन्तु अपनी प्रकृति में ये सब समान हैं : राजनैतिक-नैतिक। वे ये बात करती हैं कि मानव जीवन में क्या मूल्यवान है और इंसानों को साथ कैसे रहना चाहिए।

मान्यताओं का यह समूह संभवतः सबसे महत्वपूर्ण है और इसमें सभी भागीदारों के बीच में स्पष्ट सहमति जरूरी है। साथ ही, चाहे मान्यताओं के इस समूह के व्यक्तिगत पसंद के अनुसार कहने के अलग-अलग कई ढंग हो सकते हैं, पर स्वीकृत सिद्धान्तों पर यहां पर सबसे कम उल्लंघन की गुंजाइश है। यदि हम चाहते हैं कि हम एक उपयोगी शिक्षाक्रम रूपरेखा बनाएं, जिससे लोग तादात्म्य स्थापित कर सकें और जिस पर अर्थपूर्ण विवाद हो सके, तो हमें इस क्षेत्र की अपनी बुनियादी मान्यताएं/सिद्धान्त स्पष्ट रूप से व्यक्त करने पड़ेंगे। इन्हीं मान्यताओं के आधार से ज्यादातर लक्ष्य व उद्देश्य, हालांकि केवल यहीं से नहीं, उपजते हैं।

### ज्ञानशास्त्रीय मान्यताएं

शिक्षा में, जिन मूल्यों और स्वप्नों को हम हृदय से लगाए होते हैं, उन्हें सच करने का एकमात्र उचित रास्ता है- सीखने का रास्ता। यदि हम एक बहुलतावादी समाज चाहते हैं तो उसमें शिक्षा जो इकलौती मदद दे सकती है वह है : समझ विकसित कर, जानकारी उपलब्ध करवा के और विचारों की समीक्षात्मक विवेचना करना सिखा के। इस प्रकार शिक्षाई प्रयासों की धुरी है : अपने सबसे व्यापक स्वरूप में ज्ञान- जिसमें समझ बनाना और सोचने के तरीके शामिल हैं। हमें यह मानकर चलना पड़ेगा कि जानने से विश्वासों और कर्म पर प्रभाव पड़ता है। यदि हम इस मान्यता को खारिज कर देते हैं तो शैक्षिक कर्म की बुनियाद ही ढह जाएगी। शिक्षाक्रम का ज्ञानशास्त्र मान्यताओं का वह समूह है जो शिक्षाक्रम ढांचे को ज्ञान की प्रकृति पर, उसके निर्माण और प्रमाणीकरण के तरीकों के

बारे में जानकारी देता है।

सिखाने के लिए ज्ञान का चयन, उसको संगठित करना, एकीकृत बनाम विषयवार शिक्षाक्रम, जानकारी बनाम ज्ञान बनाम कौशल का सारा विवाद आदि, इन विवादों में भाग लेने वालों की ज्ञानशास्त्रीय मान्यताओं पर भारी रूप से निर्भर रहते हैं। इन विवादों को हल करने में ज्यादा आगे नहीं बढ़ पाने का एक अति महत्वपूर्ण कारण है कि हम कभी भी बुनियादी मान्यताओं की चर्चा पर नहीं उतरते, हम केवल बार-बार उन्हीं दृष्टिकोणों को दोहराते रहते हैं। शिक्षाक्रम में विषयवस्तु का चुनाव और संगठन भारी तौर पर मान्यताओं के इस वाले और अगले सेट पर निर्भर रहते हैं।

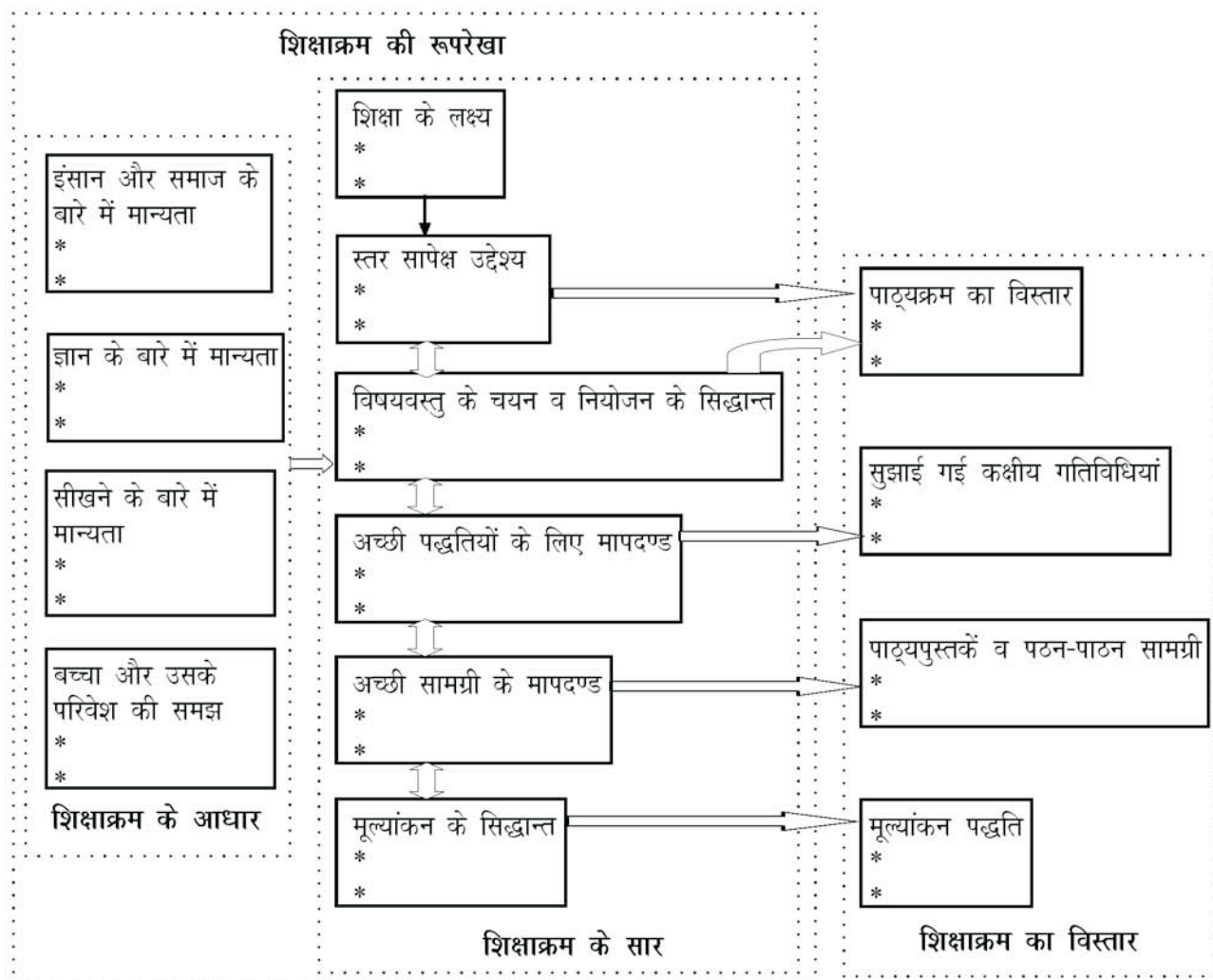
### सीखने के बारे में मान्यताएं

पिछले करीब दस सालों से डी. पी. ई. पी. और कई अन्य बड़े स्तर के कार्यक्रमों के कारण कक्षाकर्म और संगठन सीधे केन्द्रबिन्दु में आ गया है। सारे वे सकारात्मक माने जाने वाले अर्थपूर्ण वाक्य जैसे 'गतिविधि आधारित शिक्षा', 'बाल-केन्द्रित शिक्षा', 'आनन्द दायक शिक्षण' आदि बच्चों की सीखने की प्रक्रिया के विषय में बहुत-सी धारणाएं रखते हैं। असल में, पिछले एक दशक में शिक्षा संबंधी विवादों का केन्द्र बिन्दु यही रहा है, जिसने वांछनीय समाज और ज्ञानशास्त्रीय चिंतन को लगभग पूरी तरह दरकिनार कर दिया है। बच्चे और मानव के सीखने पर बनाई गई मान्यताओं की एक स्पष्ट अभिव्यक्ति कक्षाई कर्म को ज्यादा बेहतर मदद कर सकेगी और यह भी दर्शा सकेगी कि अकेले मनोविज्ञान को शिक्षाक्रम की बुनियाद बनाने की सीमाएं हैं।

### बच्ची और उसके परिवेश संबंधी मान्यताएं

आखिरकार, शिक्षाक्रम की सारी सामग्री शिक्षक के लिए है ताकि वह बच्ची के मन से एक अर्थपूर्ण रिश्ता कायम कर सके। इसके लिए यह समझना आवश्यक हो जाता है कि बच्ची संसार को कैसे देखती है। बच्ची की संसार की दृष्टि, दूसरी ओर, इस पर निर्भर करती है कि उसके पास कौन से जीवन के अनुभव हैं और उसका नजदीकी भौतिक व सामाजिक-सांस्कृतिक परिवेश क्या है। यह क्षेत्र बच्ची की प्रकृति के बारे में (यहां सीखने के बारे में मान्यताओं के साथ कुछ समानता है) तथा उनके सामाजिक संदर्भ के बारे में कई मान्यताएं रखता है। सामाजिक संदर्भ का अपना खुद का प्रभाव वांछनीय समाज और इंसानों को देखने के तरीके पर पड़ता है। इस प्रकार, मान्यताओं के इस सेट की काफी समानता इंसानों और समाज के बारे में मान्यताओं से है। इस प्रकार, इसका प्रमुख महत्त्व है सामाजिक-सांस्कृतिक पहलू को अंदर लाना या दूसरे शब्दों में, वांछनीय समाज और सीखने के मनोविज्ञान संबंधी मान्यताओं को एक विशिष्ट संदर्भ में रखना।

यदि हम इस आखिरी चर्चा को ध्यान में लें, तो हमारा प्रतीक चित्र ऐसा बनता है :



यह हमें 'शिक्षाक्रम रूपरेखा', शिक्षाक्रम, पाठ्यक्रम, पाठ्यपुस्तकों और दूसरी पठन-पाठन सामग्री और कक्षाकर्म को एक जुड़े हुए रूप में दिखाता है। ये अवधारणाएं आपस में एक-दूसरे पर प्रभाव डालती हैं, यह समझने में भी मदद करता है और इस प्रकार शिक्षाक्रम में लचीलेपन, पाठ्यपुस्तकों में वैविध्य और विकेन्द्रीकरण की बहस को सैद्धान्तिक बुनियाद देता है।

इस बिन्दु पर जो कुछ कहा जा चुका है उस पर और उससे उपजी परिभाषाओं और अन्तर्सम्बन्धों पर पुनः नजर डालना उपयोगी होगा। यह माना गया है कि शिक्षाक्रम की केन्द्रीय चिन्ता है- किसी बच्ची को उसकी मौजूदा समझ और क्षमताओं से वांछित स्तर तक प्रगति करने में इस रूप में मदद करना जो उस बच्ची के समाज में स्वीकृत शिक्षा के लक्ष्यों के साथ संगति बनाए। दूसरे शब्दों में,

शिक्षाक्रम शिक्षा के लक्ष्यों और बच्ची की क्षमताओं के बीच एक नियोजित/पूर्वाभासित संवाद है; और इसलिए, आवश्यक है कि इसमें यह सब हो : एक सुविचारित दिशा, प्रगति के भरोसेमंद पथ और साथ ही पर्याप्त लचीलापन ताकि यह बच्ची की प्रगति और रुचियों में दिखने वाली अप्रत्याशित दिशाओं के अनुसार ढल सके; परन्तु साथ ही अपनी दिशा और मोटे तौर पर योजनाबद्ध रास्तों पर चल सके।

इस मशक्कत में उठने वाली समस्याओं और उनके हल ढूंढने के प्रयासों में हमने विचारों और अवधारणाओं का ऐसा ढांचा खड़ा किया जिनकी युक्ति और औचित्य सिद्ध करने के तीन स्तर हैं। इस रूपरेखा के प्रतीक चित्र में जो सबसे बायां खंड है उसमें इंसानों, समाज, ज्ञान, सीखने, बच्ची और उसके संदर्भ से संबंधित मान्यताओं

को हम 'शिक्षाक्रम के आधार' कह सकते हैं। बीच का खंड जिसमें शिक्षा के लक्ष्य, शिक्षाक्रम के उद्देश्य, विषयवस्तु के चुनाव और नियोजन के सिद्धान्त, पद्धतियों, सामग्री और मूल्यांकन के मापदण्ड हैं, इसे 'शिक्षाक्रम का सारतत्व' कहा जा सकता है (यह वह Core Curriculum नहीं है जिसकी बात कई नीति संबंधी दस्तावेजों में की जाती है) और दाये खंड को जिसमें विस्तृत पाठ्यक्रम, पद्धतियों, पाठ्यपुस्तकों, सामग्री, व मूल्यांकन की बारीकियां हैं, 'शिक्षाक्रम का वर्णन' कहा जा सकता है।

**शिक्षाक्रम रूपरेखा :** एक ऐसी योजना जो व्यक्ति और समाज के लिए शिक्षा के लक्ष्यों का अर्थ इस रूप में निकालती है, जिससे यह समझ उपजे कि स्कूल द्वारा बच्चों को किस प्रकार के शैक्षणिक अनुभव दिए जा सकते हैं। इस योजना में आधारभूत मान्यताएं और अनुभवों के चुनाव का आधार शामिल होना चाहिए।

**शिक्षाक्रम :** जैसा लेख में पहले आ चुका है, "शिक्षाक्रम को सबसे बेहतर शायद इस प्रकार सोचा जा सकता है- एक निश्चित शैक्षणिक लक्ष्य या लक्ष्यों को कार्यान्वित करने के लिए नियोजित गतिविधियों का एक समूह- जो सिखाया जाना है उसकी विषयवस्तु क्या हो और ज्ञान, कौशल व मूल्य जो सुविचारित ढंग से विकसित किए जाएं" (क्रिस्टोफर विंच); इसके साथ ही विषयवस्तु, शिक्षण पद्धतियों, सामग्री और मूल्यांकन के चयन में रखे गए मापदण्डों का विवरण। ऊपर दर्शाए गए ढांचे में इसका अर्थ होगा 'शिक्षाक्रम सारतत्व' तथा 'पाठ्यक्रम' को एक साथ लेना।

**पाठ्यक्रम :** वह ज्ञान, कौशल व मनोवृत्तियां जो सचेत रूप से विकसित की जानी हैं, और जो कुछ सिखाया जाना है उसकी विषय वस्तु; उसके साथ स्तर सापेक्ष उद्देश्य, चयन करने की कसौटियां तथा विषयवस्तु का नियोजन।

संभवतः, यहां पर पाठ्यपुस्तक, शिक्षण सामग्री और कक्षाई शिक्षाक्रम को परिभाषा देने की जरूरत नहीं है।

### इस प्रकार की रूपरेखा के विषय में कुछ मुद्दे, चिंताएं तथा स्पष्टीकरण

एक पूरे देश की शिक्षा के लिए, बहुत व्यापक सिद्धान्तों जैसे न्याय, समता, लोकतंत्र आदि के अलावा बहुत कम ही चीजों पर अन्तिम निर्णय लिया जा सकता है। इसलिए शिक्षाक्रम रूपरेखा, शिक्षाक्रम और पाठ्यक्रम का एक प्रारम्भिक खाका-सा ही बनाया जा सकता है, जो विभिन्न मुद्दों के महत्त्व को उजागर करे, विभिन्न अंगों के बीच अन्तःसंबंध स्थापित करे, उठाए गए प्रश्नों के महत्त्व को दर्शाए और किस प्रकार के हल हो सकते हैं उसकी ओर संकेत करे। संक्षेप

में, एक अवधारणात्मक ढांचा केवल एक संगत बहस के लिए सैद्धान्तिक औजार भर उपलब्ध करवा सकता है।

अवधारणात्मक ढांचे का वह अंग, जिसे हमने यहां 'शिक्षाक्रम के आधार' कहा है, अपनी प्रकृति से ही निरन्तर विवादित क्षेत्र रहा है। मुनष्य क्या है ? हम कैसा समाज चाहते हैं ? हम कैसे निर्धारित करें कि वांछित दिशा में हम कितनी प्रगति कर चुके हैं ? वांछित दिशा में बढ़ने में क्या मदद करता है और क्या बाधा डालता है ? ये और इसी प्रकार के प्रश्न अन्तिम उत्तर देने वालों की श्रेणी में नहीं आते। इसी प्रकार, ज्ञानशास्त्र और शिक्षण मनोविज्ञान में विवादित सैद्धान्तिक मत हैं; साथ ही बच्चों के बारे में समझ और संदर्भजनित भिन्नताओं की अलग-अलग व्याख्याएं हैं। इसलिए आधारभूत मान्यताओं को अत्यधिक सावधानी से रेखांकित किया जाना चाहिए, जिसमें इतनी पर्याप्त व्यापकता भी हो कि वे सभी जायज भिन्नताओं को जगह दे सकें। यह क्षेत्र निरन्तर विवाद, अध्ययन और विमर्श का मसला रहा है। यहां पर मान्यताओं को व्यक्त करना विवाद को एक सामान्य दिशा देता है, और राष्ट्रीय विमर्श को संगत और समझ की पकड़ के अंदर रखता है।

बीच के क्षेत्र, शिक्षाक्रम सारतत्व में, तनिक ज्यादा विशिष्ट होने की जगह है। यहां मानवीय मूल्यों संबंधी सामान्य धारणाएं, आधार देने वाली निरूपित मान्यताएं (विवादित होने के बावजूद), भारतीय संविधान, मानव अधिकार घोषणाएं आदि ज्यादा मजबूत जमीन देते हैं, जिस पर खड़े होकर लक्ष्यों व सामान्य चिंताओं को कहा जा सके। ज्ञानशास्त्र और मनोविज्ञान में जो भी चुनाव हम करें, वे हमें विषयवस्तु और शिक्षण पद्धतियों के चयन के सामान्य सिद्धान्त व्यक्त करने का रास्ता देते हैं; इस प्रकार, इस क्षेत्र में कुछ सामान्य सिद्धान्तों की अभिव्यक्ति केन्द्र व राज्यों के स्तर पर संभव हो जाती है, जिसकी जिला स्तर पर व्याख्या हो तथा उसमें और जोड़ा जा सके।

तीसरे घटक, शिक्षाक्रम वर्णन, को इसके नाम के अनुसार ही ठोस रूप में बारीकियों के साथ बताना पड़ेगा। इस खंड में राज्य स्तर पर पाठ्यक्रम बनाया जा सकता है, जिसमें ऐसी गुंजाइश हो कि जिला व स्कूल स्तर पर उसका पुनर्नियोजन किया जा सके। चयनित नियमों के अनुसार शिक्षण पद्धतियां, सामग्री व मूल्यांकन जैसे चुनाव स्कूल स्तर पर किए जाने चाहिए।

**भाषान्तर : अंशुमाला**